

श्रीमद्भगवद्गीता में सांसारिक बन्धन का स्वरूप

¹ डॉ० राजकुमार, ² डॉ० नागेन्द्र नागर

¹ शोध-छात्र (डी० लि०) संस्कृत विभाग, बी०एस०ए० कॉलेज, मथुरा

² एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बी०एस०ए० कॉलेज, मथुरा

प्रस्तावना

‘बन्धन’ शब्द बन्ध धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है; जिसका अर्थ है बाँधना या स्वयं बंध जाना यथा— जीवात्मा अपने सकाम भाव से किये गये कर्मों के कारण चौरासी लाख यौनियों में आवागमन के चक्र से बंधता है— अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।¹ वेदों में विधान किये हुये सकाम कर्मों को करने वाले सोमरस को पीने वाले, पाप रहित पुरुष, भगवान श्री कृष्ण को यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को जाते हैं और वहाँ दिव्य भोगों अर्थात् देवताओं के भोगों को भोगते हैं। —

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।²

वे उस विशाल स्वर्ग लोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोक (पृथ्वीलोक) को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुये सकाम कर्म का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामना वाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणपुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं काम कामा लभन्ते।।³

आशा की सैकड़ों फाँसियों से बन्धे हुये मनुष्य काम— क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करने की चेष्टा करते हैं। वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास इतना धन है और पुनः भी इससे अधिक धन प्राप्त हो जायेगा।⁴

आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजाल समावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।⁵

मैं बड़ा धनी और और बड़ा कटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आमोद-प्रमोद करूँगा। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाला तथा अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले मोहरूप जाल से समावृत और विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त मनुष्य अपवित्र नरक में गिरते हैं। इस प्रकार जीवात्मा पाप पुण्य के प्रभाव से नरक तथा स्वर्ग प्राप्त करता है तथा इनके क्षीण होने पर मृत्युलोक में आता है; यही उसके आवागमन का चक्र ही सांसारिक बन्धन है। महर्षि अष्टावक्र जी के अनुसार— ‘तदा बन्धो यदा चित्तं सक्तं कास्वपि दुष्टिसु’⁶ अर्थात् समस्त इन्द्रिय विषयों में से मन यदि किसी भी एक विषय में आसक्त है तो वह बन्धन ग्रस्त है। जीवात्मा जब स्वयं को कर्ता मानकर कर्म करता है तो वह

बन्धन में आता है— कर्ताऽहं मन्यते इति बन्धनं।

मानव में जब-जब मैं भाव रहता है तब-तब वह सांसारिक बन्धनों से ग्रसित रहता है— यदाहं बन्धनं तदा।⁷

सारे उत्पातों के मूल में यही मैं का भाव ही प्रेरक शक्ति है। मैं की भावना से व्यक्ति में तीव्र अहंकार (क्रोध) उत्पन्न होता है, क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है—

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।⁸

यथा— मैं के कारण ही लंकापति रावण की बुद्धि क्षीण हुई थी तथा उसने सीता जी का हरण करके उन्हें श्री रामचन्द्र जी को वापिस न करके अपने सारे कुल का नाश करा लिया था। जगत् के सारे साधन मेरे हैं मैं इन्हें प्राप्त करके ही दम लूँगा। इस आकांक्षा से उसका एक पल भी चैन से व्यतीत नहीं होता। उसे अपनी आकांक्षा की पूर्ति में दूसरे लोग बाधक प्रतीत होते हैं। वह सबको शत्रु के रूप में देखता है। उसे लगता है कि सब उसके विरुद्ध षडयन्त्र रच रहे हैं, सब उसकी उपलब्धियों को हड़पने की योजना में लिप्त हैं। इसमें उसका अहंकार और भी अधिक हो जाता है। वह सबको देख लेने का प्रण लेता है। वह स्वार्थ पूर्ति के अपने अभियान में किसी को आड़े आने की अनुमति नहीं देता। उसके आड़े कोई आये या न आये यदि उसे किसी पर सन्देह होता है तो उसका सर्वनाश करने में जरा भी नहीं झिझकता है। मैं का अहंकार उसे माया मोह के बन्धन में लेता है। वह सोच भी नहीं पाता है कि प्रपंच बनकर स्वयं को ही हानि पहुँचा रहा है। आजीवन उपलब्धियों के पीछे भागना सदैव शापित और क्षुब्ध होना, क्रूरता और निरंकुशता से स्वयं को ही दग्ध करना और अन्तकाल में भय से घुट-घुट कर मरना, निःसन्देह यह सुखद जीवन नहीं है। वह मरणकाल काल में भी सत्य से परिचित नहीं हो पाता है क्योंकि वह उस समय भी सांसारिक बन्धनों से जकड़ा हुआ होता है। जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने सांसारिक बन्धन का मूल कारण अज्ञान को बताते हुए कहा है —

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धो नैसर्गिकोऽनादिरनन्त ईरितः।
जन्माप्ययव्याधिजरादिदुःख प्रवाहापातं जनयत्यमुष्य।।⁹

अनात्मा को आत्मा समझ लेना ही अज्ञान है जो मनुष्य के बन्धन का कारण है। यह बन्धन किसी मनुष्य ने स्वयं पैदा नहीं किया, बल्कि तमोगुण के कारण स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुआ है तथा इसका कहीं अन्त भी नहीं है। एक बार उत्पन्न होकर यह निरन्तर विस्तार को ही प्राप्त होता जाता है। इसी के कारण मनुष्य को जन्म, मरण, व्याधि, वृद्धावस्था आदि अनेक दुःखों का भोग करना पड़ता है।

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वह्निना छेत्तु न शक्यो न च कर्मकोटिभिः।
विवके विज्ञानमहासिना बिना धातुः प्रसादेन शितेन मंजुना।¹⁰

प्रमादालस्यनिद्राभिः प्रमादः च आलस्य च निद्रा च
प्रमादालस्यनिद्राः ताभिः तत् तमो निबध्नन्ति।¹⁴

अर्थात् सांसारिक बन्धन स्थूल नहीं है; क्योंकि इसे अस्त्र-शस्त्र, अग्नि-वायु, न किसी प्रकार के क्रिया कलापों एवं कर्मकाण्ड से ही काटा जा सकता है। यथा- जिस प्रकार अन्धकार को किसी विधि-विधान, कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, हवन, मंत्र आदि से दूर नहीं किया जा सकता, प्रकाश लाना एक मात्र उपाय है, उसी प्रकार ये बन्धन अज्ञान के कारण हैं जिन्हें ज्ञान के द्वारा ही काटा जा सकता है। यह शुद्ध आत्मज्ञान भी भगवत्कृपा से प्राप्त होता है, जिससे इन बन्धनों को काटा जा सकता है। जीवात्मा प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणों (सत्त्व, रज एवं तम) के कारण बन्धन में आता है—

सत्त्वं रजस्तम् इति गुणाः प्रकृति सम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।¹¹

प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज एवं तम ये तीनों गुण जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं। वास्तव में देखा जाय तो ये तीनों गुण अपनी तरफ से किसी को भी नहीं बाँधते, अपितु यह जीवात्मा ही इन गुणों के साथ सम्बन्ध जोड़कर स्वयं बन्ध जाता है। तात्पर्य है कि गुणों के कार्य पदार्थ घर, परिवार, शरीर, स्वभाववृत्तियों परिस्थितियों क्रियाओं आदि को अपना मान लेने से यह जीव स्वयं अविनाशी होता हुआ भी बन्ध जाता है, विनाशी पदार्थ, धनादि के वश में हो जाता है, सर्वथा स्वतंत्र होता हुआ भी पराधीन हो जाता है। यथा मनुष्य जिस धन को अपना मानता है, उसके घटने बढ़ने का असर पड़ता है, जिन व्यक्तियों को अपना मानता है उनके जन्मने-मरने पर स्वयं असर पड़ता है, जिस शरीर को अपना मानता है उसके घटने बढ़ने से स्वयं उस पर असर पड़ता है। यही गुणों का अविनाशी देही (जीवात्मा) को बाँधना है।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।¹²

उन तीनों गुणों में सत्त्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला तथा विकार रहित है, परन्तु फिर भी वह सुख और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है।

रजो रागात्मकं रंजनाद रागो गैरिकाविद् रागात्मकं विद्धि
जानीहि तृष्णासंगसमुद्भवम् तृष्णा अप्राप्ताभिलाष असंगः प्राप्ते
विषये मनसः प्रीतिलक्षणः संश्लेषः तृष्णासंगयोः समुद्भवम्
तृष्णासंगसमुद्भवम्। तदनिबध्नाति तद् रजः कोन्तेय
कर्मसंगेन दृष्टादृष्टेषु कर्मसु संजनं तत्परता कर्मसंगः तेन
निबध्नाति रजो देहिनम्।¹³

अर्थात् अप्राप्त वस्तु की अभिलाषा का नाम 'तृष्णा' है और प्राप्त विषयों में मन की प्रीतिरूप स्नेह का नाम 'आसक्ति' है, इन तृष्णा और आसक्ति की उत्पत्ति का कारण रूप रजोगुण रागात्मक है अर्थात् गुरु आदि रंगों की भांति (पुरुष को विषयों के साथ) उनमें आसक्ति करके तद्रूप करने वाला होने से यह राग रूप है। वह रजोगुण इस शरीर धारी क्षेत्रज्ञ को कर्मासक्ति से बाँधता है। दृष्ट और अदृष्ट फल देने वाले जो कर्म हैं उनमें आसक्ति—तत्परता का नाम कर्मासक्ति है, उसके द्वारा (जीवात्मा को) बाँधता है।

तमः अज्ञानजम् अज्ञानाद् जातम् अज्ञानजं विद्धि मोहनं
मोहकरं। अविवेकरं सर्वदेहिनां सर्वेषां देहवतां

अर्थात् समस्त देहधारियों को मोहित करने वाला तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। यह जीवों को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बाँधता है।

कोई भी मनुष्य किसी भी समय में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सारा जन समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।¹⁵ तभी भगवान श्री कृष्ण ने इसे कर्मबन्धन बताया है— लोकोऽयं कर्मबन्धनः¹⁶ सम्पूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व प्रकृति पर ही है। पुरुष सर्वदा उससे निर्लिप्त रहता है। सांख्यकारिका में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

तस्माच्च विपर्ययासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थं दृष्टत्वमकर्तृभावश्च।¹⁷

पुरुष केवल साक्षी ही है, वह मध्यस्थ एवं दृष्टा है, कर्ता नहीं। इसीलिए वास्तव में न तो कोई पुरुष बन्धनयुक्त होता है, न मुक्त और न ही संसरण करता है, अपितु नाना पुरुषों के आश्रय में रहने वाली प्रकृति ही संसरण (जन्म-मरण) करती है, वह बन्धनयुक्त होती है और मुक्त भी —

तस्मान्बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।¹⁸

पुरुष में तो बन्धन, संसरण और मुक्ति का उपचार मात्र (केवल निर्वाह) होता है। अर्थात् बन्ध संसरण और मोक्ष प्रकृति का ही होता है इसका दृष्टान्त देते हुए तत्त्व कौमदीकार आचार्य वाचस्पति मिश्र कहते हैं— "यथा जय पराजयो भृत्यगतावपि स्वामिन्युपचर्यते तदाश्रयेण भृत्यानां तदभागित्वात् तत्फलस्य च शोकाभादेः स्वामिनि सम्भवात्। भोगापवर्गस्य प्रकृतिगतयोरपि विवेकागृहात् पुरुष सम्बन्ध उपपादित इति सर्वं पुष्कलम्।

अर्थात् जैसे विजय और पराजय नौकर की होने पर भी स्वामी में आरोपित होती है; क्योंकि स्वामी के आश्रय से ही नौकर जय-पराजय के कार्यों में भाग लेते हैं और उनके हानि लाभ से उत्पन्न हर्ष शोकादि फल भी स्वामी को ही प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार प्रकृति से अपना भेद न समझने के कारण प्रकृतिस्थ (प्रकृति में होने वाले) भोग और अपवर्ग का सम्बन्ध भी पुरुष से उत्पन्न होता है। वास्तव में पुरुष हर्ष शोकादि का भोक्ता नहीं है और न उसका बन्धन से मोक्ष होता है; क्योंकि वह तो शुद्ध-बुद्ध-नित्य-युक्त स्वभाव है।

रुपै सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण।¹⁹

प्रकृति सात रूपों (धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य और अज्ञान) से ही अपने द्वारा पुरुष का बन्धन करती है, वही एक रूप (ज्ञान) से पुरुषार्थ के लिए बन्धन मुक्त करती है।

पातञ्जल योगप्रदीप में अविद्या को बन्धन का हेतु बताया गया है; क्योंकि यही पंचक्लेशों (अविद्या अथवा तमस, अस्मिता अथवा मोह, राग अथवा महामोह, द्वेष अथवा तामिस्र, अभिनिवेश अथवा अन्धतामिस्र) की जननी है जो (पंचक्लेश) चित्त अथवा मन में वर्तमान रहते हुये संस्काररूप गुणों के परिणाम को दृढ़ करते हैं।²⁰ योगदर्शन इसे पंचपर्वा भी कहा गया है— 'पंचपर्वा अविद्या'²¹

अनित्याशुचिदुःखनात्मसु नित्यशुचिसुखत्मकरव्याति विद्या²² अर्थात् अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान अविद्या है। 'दृग्दर्शनशक्त्येरिकात्मतेवास्मिता'²³ अर्थात् अविद्या के कारण पुरुष और चित्त में एक जैसा ज्ञान होना 'अस्मिता क्लेश है। 'सुखानुशयी रागः'²⁴ अर्थात् शरीर, इन्द्रियों और मन में आत्माध्यास हो जाने पर जिन वस्तुओं और विषयों से सुख प्रतीत होता है, उनमें उनके प्राप्त करने की जो इच्छारूप तृष्णा और लोभ पैदा हो जाता है उसके जो संस्कार चित्त में पड़ जाते हैं; उसी का नाम राग क्लेश है।

'दुःखानुशयी द्वेषः'²⁵ अर्थात् दुःख के अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त में रहती है उसको द्वेष कहते हैं। 'स्वरसवाही विदुशोऽपि तथारूढाभिनिवेशः'²⁶ अर्थात् जो मरने का भय प्रत्येक प्रणी में स्वभावतः बह रहा है और विद्वानों के लिये भी ऐसा ही प्रसिद्ध है जैसा कि मूर्खों के लिये वह अभिनिवेश है।

संख्यदर्शन में भी अविद्या को बन्धन का कारण बताया गया है— 'बन्धो विपर्यात्'²⁷ अर्थात् अज्ञान से सुख—दुःखात्मक रूप बन्ध होता है। इसी प्रकार सर्ववेदान्त सार संग्रह में बताया गया है कि जीव में रज व तम गुण की प्रधानता होती है जिससे सत्त्वगुण दब जाता है। रज एवं तमोगुण की प्रधानता से वह कर्म करता है तथा तमोगुण के कारण उसमें अज्ञान होता है। संसार भी गुणोक्त है जिससे वह संसार की ओर ही आकर्षित होता है जिससे उसका बन्धन होता है।²⁸

न ह्यस्यत्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनो ह्यविद्या भवबन्धहेतुः।
तस्मिन्विनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते।।

मन से अतिरिक्त अविद्या और कुछ नहीं है, मन ही सांसारिक बन्धन की हेतुभूता अविद्या है जो वासनाग्रस्त होकर संसार की ओर आकर्षित करती है। इसी कारण संसार की प्रतीति होती है, मनुष्य विषयों में ही आनन्द लेता है। जब यह मन नष्ट हो जाता है तो मनुष्य संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है; क्योंकि फिर उसकी वासनायें ही नहीं रहतीं। मन के जाग्रत होने से ही समस्त वासनायें उठती हैं जो बन्धन का कारण बनती हैं। जब मन कुछ चाहता है, कुछ सोचता है, कुछ त्याग करता है, कुछ ग्रहण करता है और जब वह सुखी—दुःखी होता है तब वह सांसारिक बन्धन से ग्रसित होता है—

तदा बन्धो सदा चित्तं किञ्चद्वाञ्छति शोचति।
किञ्चिन्मुञ्चति ग्रहणाति किञ्चिद्दृष्यति कुप्यति।।³⁰

जिस प्रकार पशु को किसी रस्सी से बाँधा जाता है उसी प्रकार मन ही मन शरीर एवं विषयों के प्रति राग एवं आसक्ति की कल्पना करके मनुष्य स्वयं उनसे बंध जाता है। इस प्रकार यह शरीर एवं विषय बन्धन नहीं हैं बल्कि इनके प्रति आसक्ति हाने से वह इन्हें छोड़ना नहीं चाहता। यही उसका बन्धन बन जाता है। इसीलिये बन्धन व मुक्ति का कारण मन ही है। अज्ञान के कारण ही यह मन स्वयं विषयों के प्रति आसक्ति होकर उनसे बन्धता है, विषय उसे नहीं बाँधते।³¹ जीवात्मा के सांसारिक बन्धन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से श्रीमदभागवत् महापुराण में कहा है—

सुपर्णवैतौ सद्शो सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्मन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्।।
आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः।
योऽविद्यया युक्तः स तु नित्यबद्धो विद्यामयोः य स तु नित्यमुक्तः।।

अर्थात् शरीर एक वृक्ष है, इसमें हृदय का घोंसला बनाकर जीव और ईश्वर नाम के दो पक्षी रहते हैं। वे दोनों चेतन होने के कारण समान हैं और कभी न विछुड़ने के कारण सखा हैं। इनके निवास करने का कारण केवल लीला है। इतनी समानता होने पर भी जीव तो शरीर रूप वृक्ष के फल सुख—दुःखादि के असंग और उनका साक्षी मात्र रहता है। अभोक्ता होने के कारण भी ईश्वर की यह विलक्षणता है कि वह ज्ञान, ऐश्वर्य, आनन्द, और सामर्थ्य आदि में भोक्ता जीव से बढ़कर है। साथ ही एक यह भी विलक्षणता है कि अभोक्ता ईश्वर अपने वास्तविक स्वरूप और इसके अतिरिक्त जगत् को भी जानता है; परन्तु भोक्ता जीव न अपने वास्तविक स्वरूप को न जानता है न अपने से अतिरिक्त को। इन दोनों में जीव तो अविद्या से युक्त होने के कारण नित्यबद्ध है और ईश्वर विद्यास्वरूप होने के कारण नित्यमुक्त है।³² वशिष्ठ जी के अनुसार—

एवमप्रतिबुद्धत्वादबुद्धमनुवर्तते।
देहाद् देहसहस्राणि तथा समभिपद्यते।।³³

जीव बोधहीन होने के कारण अज्ञान का ही अनुसरण करता है; इसीलिये उसे एक शरीर से हजारों शरीरों में भ्रमण करना पड़ता है। यथा रेशम का कीड़ा अपने ही उत्पन्न किये हुये तन्तुओं से अपने को सब ओर से कोशकारो यथाऽऽत्मानं कीटः समवरुन्धति।

सूत्र तन्तुगुणैरित्यं तथायगुणो गुणैः।।³⁴

बाँध लेता है, उसी प्रकार यह निर्गुण आत्मा भी अपने ही प्रकट किये हुये प्राकृत गुणों से बाँध जाता है।

इस जीव की देह में सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण को दबाकर, रजोगुण सत्त्वगुण ओर तमोगुण को दबाकर, तमोगुण सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर बढ़ता है। सत्त्वगुण के बढ़ने से इस देह में तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता एवं विवेकशक्ति उत्पन्न होती है। रजोगुण के बढ़ने पर लोभ प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धि से कर्मों का सकाम भाव से आरम्भ, अशान्ति और विषयों की लालसायें आदि उत्पन्न होती हैं। तमोगुण के बढ़ने पर अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश, कर्तव्य—कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ—य सब ही उत्पन्न होते हैं।³⁵ सत्त्वगुण की वृद्धि में मरने वाला मनुष्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है, रजोगुण की अधिकता में मरने वाला मनुष्य कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है और तमोगुण के आधिक्य में मरने वाला पशु आदि मूढ़ योनियों में जन्म लेता है। ऐसा ही सांख्यकारिका में भी वर्णित है—

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्तावद् भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चापवर्गो, विपर्यादिष्यते बन्धः।।³⁷

धर्म से ऊर्ध्व लोकों (स्वर्गादि) में गमन होता है और अधर्म से अधोलोकों नरकादि में गमन होता है। ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। जीवात्मा को अपना कर्मफल भोगने के लिये बार—बार शरीर की प्राप्ति होती रहती है—

प्रकृतिस्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्रामिमं कृत्स्नवशं प्रकृतेर्वशात्।।³⁸

परमात्मा अपनी प्रकृति (माया) को अंगीकार करके कर्मफलप्रदानार्थ सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बार बार रचता है।

निष्कर्षत

श्रीमद्भगवद्गीता में सांसारिक बन्धन का स्वरूप के संदर्भ में दिये गये तथ्यों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि जीवात्मा सृष्टि के अनादि काल से अज्ञान के कारण अपना कर्म फल भोगने के लिये चौरासी लाख यौनियों में शरीर व उसके आवागमन के चक्र से बन्धकर नाना प्रकार के दुःखों से ग्रसित होता चला आ रहा है यही सांसारिक बन्धन का स्वरूप है। इससे भगवत्कृपा से तत्त्वज्ञान प्राप्त करके सदा सदा के लिये छुटकारा मिल जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 5/12
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/20
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/21
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/12-13
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/15-16
6. अष्टावक्रगीता, 8/3
7. अष्टावक्रगीता, 8/4
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/63
9. विवेकचूडामणि, 4/148
10. विवेकचूडामणि, 4/149
11. साधकसंजीवनी, 14/5
12. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/6
13. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य), 14/7
14. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य), 14/8
15. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/5
16. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/9
17. सांख्यकारिका, 19
18. सांख्यकारिका, 62
19. सांख्यकारिका, 63
20. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 3
21. पातञ्जलयोगप्रदीप: भूमिका, चौथा प्रकरण, 12
22. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 5
23. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 6
24. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 7
25. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 8
26. पातञ्जलयोगप्रदीप (साधनपाद), 9
27. सांख्यदर्शन, 3/24
28. सर्ववेदान्त सिद्धान्त सार संग्रह, 507, 508
29. विवेकचूडामणि, 5/171
30. अष्टावक्रगीता, 8/1
31. विवेकचूडामणि
32. श्रीमद्भागवत् महापुराण, 11/11/5-6
33. महाभारत/शान्ति पर्व (मोक्षधर्म पर्व), 303/1
34. महाभारत/शान्ति पर्व (मोक्षधर्म पर्व),
35. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/10-13
36. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/14-15
37. सांख्यकारिका, 44
38. श्रीमद्भगवद्गीता, 9/8